International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

वैशेषिक दर्शन में द्रव्य निरूपण और उसकी वैज्ञानिकता

[1]श्रीमती बृजलता, [2]डॉ. चन्दनलाल पाराशर

[1]शोधकत्री, कु.मु हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश

[2]प्रभारी/अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कु.मु हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश

सार

वैशेषिक, भारतीय दर्शनों में से एक दर्शन है। इसके मूल प्रवर्तक ऋषि कणाद हैं (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी)। यह दर्शन न्याय दर्शन से बहुत साम्य रखता है किन्तु वास्तव में यह एक स्वतंत्र भौतिक विज्ञानवादी दर्शन है। इस प्रकार के आत्मदर्शन के विचारों का सबसे पहले महर्षि कणाद ने सूत्र रूप में (वैशेषिकसूत्र में) लिखा। यह दर्शन "औलूक्य", "काणाद", या "पाशुपत" दर्शन के नामों से प्रसिद्ध है। इसके सूत्रों का आरम्भ "अथातो धर्मजिज्ञासा" से होता है। इसके बाद दूसरा सूत्र है- "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि होती है, वह धर्म है। इसके लिये समस्त अर्थतत्त्व को छः ' पदार्थों ' (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय) में विभाजित कर उन्हीं का मुख्य रूप से उपपादन करता है। वैशेषिक दर्शन और पाणिनीय व्याकरण को सभी शास्त्रों का उपकारक माना गया है —

काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्

वैशेषिक का अर्थ है – "विशेषं पदार्थमधिकृत्य कृतं शास्त्रं वैशेषिकम्" अर्थात् 'विशेष' नामक पदार्थ को मूल मानकर प्रवृत्त होने के कारण इस शास्त्र का नाम वैशेषिक है। वैशेषिक दर्शन ६ पदार्थ मानता है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय । द्रव्यों की संख्या ९ मानता है – पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। २४ गुण स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिणाम, पार्थक्य, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुःख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, स्नेह, गुरुत्व और द्रव्यत्व हैं। कर्मों के ५ प्रकार माने गये हैं- उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। सामान्य के दो प्रकार इस दर्शन में माना गया है- सत्ता सामान्य और विशिष्ट सामान्य।

परिचय

इस दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त निम्न हैं –[1]

परमाणु – जगत का मूल उपादान कारण परमाणु माना है। दो परमाणुओं से 'द्वयणुक' एवं कतिपय द्वयणुक के संयोग से 'त्रसरेणु' उत्पन्न होता है।

अनेकात्मवाद – यह दर्शन जीवात्माओं को अनेक मानता है तथा कर्मफल भोग के लिए अलग-अलग शरीर मानता है।

असत्कार्यवाद – इस दर्शन का सिद्धान्त है कि कारण से कार्य होता है। कारण नित्य हैं, और कार्य अनित्य।

मोक्षवाद – जीव का परम् लक्ष्य मोक्ष (आवागमन के चक्र से मुक्त होना) मानता है। मिथ्या-ज्ञान को जीव के दुःख का कारण माना गया है।[1,2,3]

इस दर्शन में भूकम्प आना, वर्षा होना, चुम्बक में गति, गुरुत्वाकर्षण विज्ञान, ध्वनि तरंगे आदि के विषय में विवेचना प्रस्तुत की गई है। वैशेषिकसूत्र में दस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक और ३७० सूत्र हैं। पठन-पाठन में विशेष प्रचलित न होने के कारण वैशेषिक सूत्रों में अनेक पाठभेद हैं तथा 'त्रुटियाँ' भी पर्याप्त हैं। मीमांसासूत्रों की तरह इसके कुछ सूत्रों में पुनरुक्तियाँ हैं - जैसे "सामान्यविशेषाभावेच" (4 बार) "सामान्यतोदृष्टाच्चा विशेषः" (2 बार), "तत्त्वं भावेन" (4 बार), "द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्यख्याते" (3 बार), "संदिग्धस्तूपचारः" (2 बार)।

नामकरण

इसके नामकरण के दो कारण कहे जाते हैं -

(1) प्रत्येक नित्य द्रव्य को परस्पर पृथक् करने के लिए तथा प्रत्येक तत्व के वास्तविक स्वरूप को पृथक्-पृथक् जानने के लिए इन्होंने एक "विशेष" नाम का पदार्थ माना है ;

(2) "द्वित्व", "पाकजोत्पत्ति" एवं "विभागज विभाग" इन तीन बातों में इनका अपना विशेष मत है जिसमें ये दृढ़ हैं। अभिप्राय यह है कि वैशेषिक दर्शन व्यावहारिक तत्वों का विचार करने में संलग्न रहने पर भी स्थूल दृष्टि से सर्वथा व्यवहारतः समान रहने पर भी, प्रत्येक वस्तु दूसरे से भिन्न है। इन्होंने इसके परिचायक एकमात्र पदार्थ "विशेष" पर बल दिया है, इसलिए प्राचीन भारतीय दर्शन की

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

इस धारा को "वैशेषिक" दर्शन कहते हैं। अन्य शास्त्रों ने इस बात का विवेचन नहीं किया है। पर उक्त कुछ कारणों से इस दर्शन को "वैशेषिक दर्शन" की संज्ञा दी गई है।

वैशेषिक दर्शन के मुख्य ग्रंथ

- कणादकृत वैशेषिकसूत्र - इसमें दस अध्याय हैं।
- वैशेषिकसूत्र के दो भाष्यग्रन्थ हैं - रावणभाष्य तथा भारद्वाजवृत्ति। वर्तमान में दोनो अप्राप्य हैं।
- पदार्थधर्मसंग्रह (प्रशस्तपाद, ४थी सदी के पूर्व) वैशेषिक का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यद्यपि इसे वैशेषिकसूत्र का भाष्य कहा जाता है, किन्तु यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है।
- पदार्थधर्मसंग्रह की टीका व्योमवती (व्योमशिवाचार्य, 8 वीं सदी),
- पदार्थधर्मसंग्रह की अन्य टीकाएँ हैं- न्यायकन्दली (श्रीधराचार्य, 10 वीं सदी), किरणावली (उदयनाचार्य 10 वीं सदी), लीलावती (श्रीवत्स, ११वीं शदी)।
- पदार्थधर्मसंग्रह पर आधारित चन्द्र के दशपदार्थशास्त्र का अब केवल चीनी अनुवाद प्राप्य है।
- ११वीं शदी के आसपास रचित शिवादित्य की सप्तपदार्थी में न्याय तथा वैशेषिक का सम्मिश्रण है।
- कटन्दी, वृत्ति-उपस्कर (शंकर मिश्र 15 वीं सदी),
- भाषापरिच्छेद या कारिकावली - विश्वनाथ न्यायपञ्चानन कृत (1634 ई) ; इस पर उन्होने 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली' नाम से स्वयं भाष्य लिखा है।
- तर्कसंग्रह : न्याय एवं वैशेषिक दोनो दर्शनों को समाहित करने वाला ग्रंथ है। इसके रचयिता अन्नम्भट्ट हैं जिनका समय १६२५ से १७०० ई माना जाता है।
- अन्य : वृत्ति, भाष्य (चंद्रकांत 20 वीं सदी), विवृत्ति (जयनारायण 20 वीं सदी), कणाद-रहस्य, तार्किक-रक्षा आदि अनेक मौलिक तथा टीका ग्रंथ हैं।[2]

न्याय एवं वैशेषिक[4,5,6]

वैशेषिक तथा न्याय दोनों दर्शन ही "समानतंत्र" हैं। व्यावहारिक जगत् को यह वास्तविक मानते हैं। ये बाह्य जगत् तथा अंतर्जगत् की अवधारणा में परस्पर एवं घनिष्ठ संबंध मानते हैं। बाह्य जगत् (मानसिक) विचार पर निर्भर नहीं है, यह स्वतंत्र है।
'आत्मदर्शन' के लिए विश्व की सभी छोटी-बड़ी, तात्विक तथा तुच्छ वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना सामान रूप से आवश्यक है। इन तत्वों के ज्ञान के लिए प्रमाणों की अपेक्षा होती है। न्यायशास्त्र में प्रमाण पर विशेष विचार किया गया है, किंतु वैशेषिक दर्शन में मुख्य रूप से 'प्रमेय' के विचार पर बल दिया गया है।

यहाँ स्मरण कराना आवश्यक है कि न्याय की तरह वैशेषिक भी, लौकिक दृष्टि ही से विश्व के 'वास्तविक' तत्वों पर दार्शनिक विचार करता है। लौकिक जगत् की वास्तविक परिस्थितियों की उपेक्षा वह कभी नहीं करता, तथापि जहाँ किसी तत्व का विचार बिना सूक्ष्म दृष्टि का हो नहीं सकता, वहाँ किसी प्रकार अतीन्द्रिय, अदृष्ट, सूक्ष्म, योगज आदि हेतुओं के आधार पर अपने सिद्धांत को स्थापित करना इस धारा के दार्शनिकों का स्वभाव है, अन्यथा उनकी वैचारिक भित्तियां अंतर्विरोधी होतीं ; फलतः परमाणु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन आदि सत्ताओं का स्वीकार इस दर्शन में बराबर उपस्थित है।

वैशेषिकों के स्वरूप, वेष तथा आचार आदि 'नैयायिकों' की तरह होते हैं; जैसे, ये लोग शैव हैं, इन्हें शैव-दीक्षा दी जाती थी। इनके चार प्रमुख भेद हैं - शैव, पाशुपत, महाव्रतधर, तथा कालमुख एवं भरट, भक्तर, आदि गौण भेद भी मिलते हैं। वैशेषिक विशेष रूप से "पाशुपत्" कहे जाते हैं। (षड्दर्शनसमुच्चय, गुणरस्त की टीका न्याय-वैशेषिक मत। इस ग्रंथ से अन्य 'आचारों' के संबंध में संज्ञान हो सकता है)।

परिचय

वैशेषिक मत में समस्त विश्व "भाव और अभाव" इन दो विभागों में विभाजित है। इनमें "भाव" के छह विभाग किए गए हैं- जिनके नाम हैं - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, तथा समवाय। अभाव के भी चार उप-भेद हैं - प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यंताभाव तथा अन्योन्याभाव। ग्रंथों में इनके लक्षण आदि कुछ इस तरह प्राप्त होते हैं :

भाव

द्रव्य जिसमें "द्रव्यत्व जाति" हो वही द्रव्य है। कार्य के समवायिकरण को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य गुणों का आश्रय है। पृथ्वी, जल, तेजस, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मनस् ये नौ "द्रव्य" कहलाते हैं। इनमें से प्रथम चार द्रव्यों के नित्य और अनित्य, दो भेद हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

नित्यरूप को "परमाणु" तथा अनित्य रूप को कार्य कहते हैं। चारों भूतों के उस हिस्से को "परमाणु" कहते हैं जिसका पुन: भाग न किया जा सके, अतएव यह नित्य है। पृथ्वीपरमाणु के अतिरिक्त अन्य परमाणुओं के गुण भी नित्य है।

जिससे गंध हो वह "पृथ्वी", जिसमें शीत स्पर्श हो वह "जल" जिसमें उष्ण स्पर्श हो वह "तेजस्", जिनमें रूप न हो तथा अग्नि के संयोग से उत्पन्न न होने वाला, अनुष्ण और अशीत स्पर्श हो, वह "वायु", तथा शब्द जिसका गुण हो अर्थात् शब्द का जो समवायीकरण हो, वह "आकाश" है। ये ही 'पंचभूत' भी कहलाते हैं।

आकाश, काल, दिक् तथा आत्मा ये चार "विभु" द्रव्य हैं। मनस् अभौतिक परमाणु है और नित्य भी है। आज, कल, इस समय, उस समय, मास, वर्ष, आदि समय के व्यवहार का जो साधारण कारण है- वह काल है। काल नित्य और व्यापक है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आदि दिशाओं तथा विदिशाओं का जो असाधारण कारण है, वह "दिक्" है। यह भी नित्य तथा व्यापक है। आत्मा और मनस् का स्वरूप यहाँ न्यायमत के समान ही है।

गुण कार्य का असमवायीकरण "गुण" है। रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह (चिकनापन), शब्द, ज्ञान, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म तथा संस्कार ये चौबीस गुण के भेद हैं। इनमें से रूप, गंध, रस, स्पर्श, स्नेह, स्वाभाविक द्रवत्व, शब्द तथा ज्ञान से लेकर संस्कार पर्यंत, ये "वैशेषिक गुण" हैं, अवशिष्ट साधारण गुण हैं। गुण द्रव्य ही में रहते हैं।

कर्म क्रिया को "कर्म" कहते हैं। ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना, सिकुड़ना, फैलाना तथा (अन्य प्रकार के) गमन, जैसे भ्रमण, स्पंदन, रेचन, आदि, ये पाँच "कर्म" के भेद हैं। कर्म द्रव्य ही में रहता है।[7,8,9]
सामान्य अनेक वस्तुओं में जो एक सी बुद्धि होती है, उसके कारण प्रत्येक घट में जो "यह घट है" इस प्रकार की ए सी बुद्धि होती है, उसका कारण उसमें रहनेवाला "सामान्य" है, जिसे वस्तु के नाम के आगे "त्व" लगाकर कहा जाता है, जैसे - घटत्व, पटत्व। "त्व" से उस जाति के अंतर्गत सभी व्यक्तियों का ज्ञान होता है।

यह नित्य है और द्रव्य, गुण तथा कर्म में रहता है। अधिक स्थान में रहनेवाला "सामान्य", "परसामान्य" या "सत्तासामान्य" या "पर सत्ता" कहा जाता है। सत्तासामान्य द्रव्य, गुण तथा कर्म इन तीनों में रहता है। प्रत्येक वस्तु में रहनेवाला तथा अव्यापक जो सामान्य हो, वह "अपर सामान्य" या "सामान्य विशेष" कहा जाता है। एक वस्तु को दूसरी वस्तु से पृथक् करना सामान्य का अर्थ है।
विशेष द्रव्यों के अंतिम विभाग में रहनेवाला तथा नित्य द्रव्यों में रहनेवाला "विशेष" कहलाता है। नित्य द्रव्यों में परस्पर भेद करनेवाला एकमात्र यही पदार्थ है। यह अनंत है।
समवाय एक प्रकार का संबंध है, जो अवयव और अवयवी, गुण और गुणी, क्रिया और क्रियावान् जाति और व्यक्ति तथा विशेष और नित्य द्रव्य के बीच रता है। वह एक है और नित्य भी है।

अभाव
किसी वस्तु का न होना, उस वस्तु का "अभाव" कहा जाता है। इसके चार भेद हैं - "प्राग् अभाव" कार्य उत्पन्न होन के पहले कारण में उस कर्य का न रहना, "प्रध्वंस अभाव" कार्य के नाश होने पर उस कार्य का न रहना, "अत्यंत अभाव" तीनों कालों में जिसका सर्वथा अभाव हो, जैसे वंध्या का पुत्र तथा "अन्योन्य अभाव" परस्पर अभाव, जैसे घट में पट का न होना तथा पट में घट का न होना।
न्याय एवं वैशेषिक दर्शन की तुलना
ये सभी पदार्थ न्यायदर्शन के प्रमेयों के अंतर्गत है। इसलिए न्यायदर्शन में इनका पृथक् विचार नहीं है, किंतु वैशेषिक दर्शन में तो मुख्य रूप से इनका विचार है। वैशेषिक मत के अनुसार इन सातों पदार्थों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने से मुक्ति मिलती है।
इन दोनों समान तत्वों में पदार्थों के स्वरूप में इतना भेद रहने पर भी दोनों दर्शन एक ही में मिले रहते हैं, इसका कारण है कि दोनों शास्त्रों का मुख्य प्रमेय है "आत्मा"। आत्मा का स्वरूप दोनों दर्शनों में एक ही सा है। अन्य विषय है - उसी आत्मा के जानने के लिए उपाय। उसमें इन दोनों दर्शनों में विशेष अंतर भी नहीं है। केवल शब्दों में तथा कहीं-कहीं प्रक्रिया में भेद है। फल में भेद नहीं है। अतएव न्यायमत के अनुसार प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान से दोनों से एक ही प्रकार की "मुक्ति" मिलती है। दोनों का दृष्टिकोण भी एक ही है।
न्याय वैशेषिक मत में पृथ्वी, जल, तेजस् तथा वायु इन्हीं चार द्रव्यों का कार्य रूप में भी अस्तित्व है। इन लागों का मत में सभी कार्य द्रव्यों का नाश हो जाता है और वे परमाणु रूप में आकाश में रहते हैं। यही अवस्था "प्रलय" कहलाती है। इस अवस्था में प्रत्येक जीवात्मा अपने मनस् के साथ तथा पूर्व जन्मों के कर्मों के संस्कारों के साथ तथा अदृष्ट रूप में धर्म और अधर्म के साथ विद्यमान रहती है। परतु इस समय सृष्टि का कोई कार्य नहीं होता। कारण रूप में सभी वस्तुएँ उस समय की प्रतीक्षा में रहती हैं, जब जीवों के

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

सभी अदृष्ट कार्य रूप में परिणत होने के लिए तत्पर हो जाते हैं। परंतु अदृष्ट जड़ है, शरीर के न होने से जीवात्मा भी कोई कार्य नहीं कर सकती, परमाणु आदि सभी जड़ हैं, फिर "सृष्टि" के लिए क्रिया किस प्रकार उत्पन्न हो[10,11,12]
इसके उत्तर में यह जानना चाहिए कि उत्पन्न होनेवाले जीवों के कल्याण के लिए परमात्मा में सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है, जिससे जीवों के अदृष्ट कार्योन्मुख हो जाते हैं। परमाणुओं में ए प्रकार की क्रिया उत्पन्न हो जाती है, जिससे एक परमाणु, दूसरे परमाणु से संयुक्त हो जाते हैं। दो परमाणुओं के संयोग से एक "द्रव्यणुक" उत्पन्न होता है। पार्थिव शरीर को उत्पन्न करने के लिए जो दो परमाणु इकट्ठे होते हैं वे पार्थिव परमाणु हैं। वे दोनों उत्पन्न हुए "दव्यणुक" के समवायिकारण हैं। उन दोनों का संयोग असमवायिकारण है और अदृष्ट, ईश्वर की इच्छा, आदि निमित्तकारण हैं। इसी प्रकार जलीय, तैजस आदि शरीर के संबंध में समझना चाहिए।

यह स्मरण रखना चाहिए कि सजातीय दोनों परमाणु मात्र ही से सृष्टि नहीं होती। उनके साथ एक विजातीय परमाणु, जैसे जलीय परमाणु भी रहता है। "द्रव्यणुक" में अणु-परिमाण है इसलिए वह दृष्टिगोचर नहीं होता। "दवयणुक" से जो कार्य उत्पन्न होगा वह भी अणुपरिमाण का ही रहेगा और वह भी दृष्टिगोचर न होगा। अतएव दव्यणुक से स्थूल कार्य द्रव्य को उत्पन्न करने के लिए "तीन संख्या" की सहायता ली जाती है। न्याय-वैशेषिक में स्थूल द्रव्य, स्थूल द्रव्य का महत् परिमाणवाले द्रव्य से तथा तीन संख्या से उत्पन्न होता है। इसलिए यहाँ दव्यणुक की तीन संख्या से स्थूल द्रव्य "त्र्यणुक" या "त्रसरेणु" की उत्पत्ति होती है। चार त्र्यणुक से चतुरणुक उत्पन्न होता है। इसी क्रम से पृथिवी तथा पार्थिव द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। द्रव्य के उत्पन्न होने के पश्चात् उसमें गुणों की भी उत्पत्ति होती है। यही सृष्टि की प्रक्रिया है।

संसार में जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं सभी उत्पन्न हुए जीवों के भोग के लिए ही हैं। अपने पूर्वजन्म के कर्मों के प्रभाव से जीव संसार में उत्पन्न होता है। उसी प्रकार भोग के अनुकूल उसके शरीर, योनि, कुल, देश, आदि सभी होते हैं। जब वह विशेष भोग समाप्त हो जाता है, तब उसकी मृत्यु होती है। इसी प्रकार अपने अपने भोग के समाप्त होने पर सभी जीवों की मृत्यु होती है।
न्यायमत - "संहार" के लिए भी एक क्रम है। कार्य द्रव्य में, अर्थात् घट में, प्रहार के कारण उसके अवयवों में एक क्रिया उत्पन्न होती है। उस क्रिया से उसके अवयवों में विभाग होता है, विभाग से अवयवी (घट) के आरंभक संयोगों का नाश होता है। और फिर घट नष्ट हो जाता है। इसी क्रम से ईश्वर की इच्छा से समस्त कार्य द्रव्यों का एक समय नाश हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि असमवायिकारण के नाश से कार्यद्रव्य का नाश होता है। कभी समवायिकारण के नाश से भी कार्यद्रव्य का नाश होता है।
इनका ध्येय है कि बिना कारण के नाश हुए कार्य का नाश नहीं हो सकता। अतएव सृष्टि की तरह संहार के लिए भी परमाणु में ही क्रिया उत्पन्न होती है और परमाणु तो नित्य है, उसका नाश नहीं होता, किंतु दो परमाणुओं के संयोग का नाश होता है और फिर उससे उत्पन्न "द्रव्यणुक" रूप कार्य का तथा उसी क्रम से "त्र्यणुक" एवं "चतुरणुक" तथा अन्य कार्यों का भी नाश होता है। नैयायिक लोग स्थूल दृष्टि के अनुसार इतना सूक्ष्म विचार नहीं करते। उनके मत में आघात मात्र ही से एक बारगी स्थूल द्रव्य नष्ट हो जाता है। कार्य द्रव्य के नाश होने पर उसके गुण नष्ट हो जाते हैं। इसमें भी पूर्ववत् दो मत हैं जिनका निरूपण "पाकज प्रक्रिया" में किया गया है।
न्याय मत की तरह वैशेषिक मत में भी बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान तथा प्रत्यय ये समान अर्थ के बोधक शब्द हैं। अन्य दर्शनों में ये सभी शब्द भिन्न भिन्न पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बुद्धि के अनेक भेद होने पर भी प्रधान रूप से इसके दो भेद हैं - "विद्या" और "अविद्या", अविद्या के चार भेद है - संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय तथा स्वप्न।
संशय तथा विपर्यय का निरूपण न्याय में किया गया है। वैशेषिक मत में इनके अर्थ में कोई अंतर नहीं है। अनिश्चयात्मक ज्ञान को "अनध्यवसाय" कहते हैं। जैसे - कटहल को देखकर वाहीक को, एक सास्ना आदि से युक्त गाय को देखकर नारिकेल द्वीपवासियों के मन में शंका होती है कि यह क्या है?
दिन भर कार्य करने से शरीर के सभी अंग थक जाते हैं। उनको विश्राम की अपेक्षा होती है। इंद्रियाँ विशेषकर थक जाती हैं और मन में लीन हो जाती है। फिर मन मनोवह नाड़ी के द्वारा पुरीतत् नाड़ी में विश्राम के लिए चला जाता है। वहाँ पहुँचने के पहले, पूर्वकर्मों के संस्कारों के कारण तथा वात, पित्त और कफ इन तीनों के वैषम्य के कारण, अदृष्ट के सहारे उस समय मन को अनेक प्रकार के विषयों का प्रत्यक्ष होता है, जिसे स्वप्नज्ञान कहते हैं।
यहाँ इतना ध्यान में रखना चाहिए कि वैशेषिक मत में ज्ञान के अंतर्गत हो "अविद्या" को रखा है और इसीलिए "अविद्या" को "मिथ्या ज्ञान" भी कहते हैं। बहुतों का कहना है कि ये दोनों शब्द परस्पर विरुद्ध है। जो मिथ्या हैं, वह ज्ञान नहीं कहा जा सकता और जो ज्ञान है, वह कदापि मिथ्या नहीं कहा जा सकता।
विद्या भी चार प्रकार की है - प्रत्यक्ष, अनुमान, स्मृति तथा आर्ष। यहाँ यह ध्यान में रखना है कि न्याय में "स्मृति" को यथार्थज्ञान नहीं कहा है। वह तो ज्ञात ही का ज्ञान है। इसी प्रकार "आर्ष ज्ञान" भी नैयायिक नहीं मानते। नैयायिकों के शब्द या आगम को अनुमान में तथा उपमान को प्रत्यक्ष में वैशेषिकों ने अंतर्भूत किया है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

वेद के रचनेवाले ऋषियों को भूत तथा भविष्य का ज्ञान प्रत्यक्ष के समान होता है। उसमें इंद्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष की आवश्यकता नहीं रहती। यह "प्रातिभ" (प्रतिभा से उत्पन्न) ज्ञान या "आर्षज्ञान" कहलाता है। यह ज्ञान विशुद्ध अत:करणवाले जीव में भी कभी कभी हो जाता है। जैसे - एक पवित्र कन्या कहती है - कल मेरे भाई आवेंगे और सचमुच कल उसके भाई आ ही जाते हैं। यह "प्रातिभ ज्ञान" है।

प्रत्यक्ष और अनुमान के विचार में दोनों दर्शनों में कोई भी मतभेद नहीं है। इसलिए पुनः इनका विचार यहाँ नहीं किया गया।[13,14,15]

कर्म का बहुत विस्तृत विवेचन वैशेषिक दर्शन में किया गया है। न्याय दर्शन में कहे गए "कर्म" के पाँच भेदों को ये लोग भी उन्हीं अर्थों में स्वीकार करते हैं। कायिक चेष्टाओं ही को वस्तुत: इन लोगों ने "कर्म" कहा है। फिर भी सभी चेष्टाएँ प्रयत्न के तारतम्य ही से होती हैं। अतएव वैशेषिक दर्शन में उक्त पाँच भेदों के प्रत्येक के साक्षात् तथा परंपरा में प्रयत्न के संबंध से कोई कर्म प्रयत्नपूर्वक होते हैं, जिन्हें "सत्प्रत्यय-कर्म" कहते हैं, कोई बिना प्रयत्न के होते हैं, जिन्हें "असत्प्रत्यय-कर्म" कहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे कर्म होते हैं, जैसे पृथ्वी आदि महाभूतों में, जो बिना किसी प्रयत्न के होते हैं, उन्हें "अप्रत्यय-कर्म" कहते हैं।

इन सब बातों को देखकर यह स्पष्ट है कि वैशेषिक मत में तत्वों का बहुत सूक्ष्म विचार है। फिर भी सांसारिक विषयों में न्याय के मत में वैशेषिक बहुत सहमत है। अतएव ये दोनों "समानतंत्र" कहे जाते हैं।

विचार-विमर्श

न्याय एवं वैशेषिक में प्रमुख भेद (सारांश)

इन दोनों दर्शनों में जिन बातो में "भेद" है, उनमें से कुछ भेदों का पुन: उल्लेख यहाँ किया जाता है।

- (1) न्यायदर्शन में प्रमाणों का विशेष विचार है। प्रमाणों ही के द्वारा तत्वज्ञान होने से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। साधारण लौकिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर न्यायशास्त्र के द्वारा तत्वों का विचार किया जाता है। न्यायमत में सोलह पदार्थ हैं और नौ प्रमेय हैं।

वैशेषिक दर्शन में प्रमेयों का विशेष विचार है। इस शास्त्र के अनुसार तत्वों का विचार करने में लौकिक दृष्टि से दूर भी शास्त्रकार जाते हैं। इनकी दृष्टि सूक्ष्म जगत् के द्वार तक जाती है इसलिए इस शास्त्र में प्रमाण का विचार गौण समझा जाता है। वैशेषिक मत में सात पदार्थ हैं और नौ द्रव्य हैं।

- (2) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द इन चार प्रमाणों को न्याय दर्शन मानता है, किंतु वैशेषिक केवल प्रत्यक्ष और अनुमान इन्हीं दो प्रमाणों को मानता है। इसके अनुसार शब्दप्रमाण अनुमान में अंतर्भूत है। कुछ विद्वानों ने इसे स्वतंत्र प्रमाण भी माना है।
- (3) न्यायदर्शन के अनुसार जितनी इंद्रियाँ हैं उतने प्रकार के प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे - चाक्षुष, श्रावण, रासन, घ्राणज तथा स्पार्शना किंतु वैशेषिक के मत में एकमात्र चाक्षुष प्रत्यक्ष ही माना जाता है।
- (4) न्याय दर्शन के मत में समवाय का प्रत्यक्ष होता है, किंतु वैशेषिक के अनुसार इसका ज्ञान अनुमान से होता है।
- (5) न्याय दर्शन के अनुसार संसार की सभी कार्यवस्तु स्वभाव ही से छिद्रवाली होती हैं। वस्तु के उत्पन्न होते ही उन्हीं छिद्रों के द्वारा उन समस्त वस्तुओं में भीतर और बाहर आग या तेज प्रवेश करता है तथा परमाणु पर्यंत उन वस्तुओं को पकाता है। जिस समय तेज की कणाएँ उस वस्तु में प्रवेश करती हैं, उस समय उस वस्तु का नाश नहीं होता। यह अंग्रेजी में 'केमिकल ऐक्शन' कहलाता है। जैसे - कुम्हार घड़ा बनाकर आवें में रखकर जब उसमें आग लगाता है, तब घड़े के प्रत्येक छिद्र से आग की कणाएँ उस में प्रवेश करती हैं और घड़े के बाहरी और भीतरी हिस्सों को पकाती हैं। घड़ा वैसे का वैसा ही रहता है, अर्थात् घड़े के नाश हुए बिना ही उसमें पाक हो जाता है। इसे ही न्याय शास्त्र में "पिठरपाक" कहते हैं।

वैशेषिकों का कहना है कि कार्य में जो गुण उत्पन्न होता है, उस पहले उस कार्य के समवायिकारण में उत्पन्न होना चाहिए। इसलिए जब कच्चा घड़ा आग में पकने को दिया जाता है, तब आग सबसे पहले उस घड़े के जितने परमाणु हैं, उन सबको पकाती है और उसमें दूसरा रंग उत्पन्न करती है। फिर क्रमश: वह घड़ा भी पक जाता है और उसका रंग भी बदल जाता है। इस प्रक्रिया के अनुसार जब कुम्हार कच्चे घड़े को आग में पकने के लिए देता है, तब तेज के जोर से उस घड़े का परमाणु पर्यंत नाश हो जाता है और उसके परमाणु अलग अलग हो जाते हैं पश्चात् उनमें रूप बदल जाता है, अर्थात् घड़ा नष्ट हो जाता है और परमाणु के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा रंग बदल जाता है, फिर उस घड़े से लाभ उठानेवालों के अदृष्ट के कारणवश सृष्टि के क्रम से फिर बनकर वह घड़ा तैयार हो जाता है। इस प्रकार उन पक्व परमाणुओं से संसार के समस्त पदार्थ, भौतिक या अभौतिक तेज के कारण पकते रहते हैं। इन वस्तुओं में जितने परिवर्तन होते हैं वे सब इसी पाकज प्रक्रिया (केमिकल ऐक्शन) के कारण होते हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह पाक केवल पृथिवी से बनी हुई वस्तुओं में होता है। इसे वैशेषिक "पीलुवाक" कहते हैं।

- (6) नैयायिक असिद्ध, विरुद्ध, अनैकांतिक, प्रकरणसम तथा कालात्ययापदिष्ट - ये पाँच हेत्वाभास मानते हैं, किंतु वैशेषिक विरुद्ध, असिद्ध तथा संदिग्ध, ये ही तीन हेत्वाभास मानते हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

- (7) नैयायिकों के मत में पुण्य से उत्पन्न "स्वप्न" सत्य और पाप से उत्पन्न स्वप्न असत्य होते हैं, किंतु वैशेषिक के मत में सभी स्वप्न असत्य हैं।[16,17,18]
- (8) इनके अतिरिक्त कर्म की स्थिति में, वेगाख्य संस्कार में, सखंडोपाधि में, विभागज विभाग में, द्वित्वसंख्या की उत्पत्ति में, विभुओं के बीच अजसंयोग में, आत्मा के स्वरूप में, अर्थ शब्द के अभिप्राय में, सुकुमारत्व और कर्कशत्व जाति के विचार में, अनुमान संबंधों में, स्मृति के स्वरूप में, आर्ष ज्ञान में तथा पार्थिव शरीर के विभागों में भी परस्पर इन दोनों शास्त्रों में मतभेद हैं। इस प्रकार के दोनों शास्त्र कतिपय सिद्धांतों में भिन्न-भिन्न मत रखते हुए भी परस्पर संबद्ध हैं। इनके अन्य सिद्धांत परस्पर लागू होते हैं।

परिणाम

वैशेषिकसूत्र कणाद मुनि द्वारा रचित वैशेषिक दर्शन का मुख्य ग्रन्थ है। इस पर अनेक टीकाएं लिखी गयीं जिसमें प्रशस्तपाद द्वारा रचित पदार्थधर्मसङ्ग्रह प्रसिद्ध है। कणाद ने वैशेषिकसूत्र में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय नामक छः पदार्थों का निर्देश किया है। बाद में प्रशस्तपाद प्रभृति भाष्यकारों ने प्रायः कणाद के मन्तव्य का अनुसरण करते हुए पदार्थों का विश्लेषण किया।

वैशेषिकसूत्र में दस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आहितिक हैं। इसमें कुल ३७० सूत्र हैं।

वैशेषिक, भारतीय दर्शनों में से एक दर्शन है। इसके मूल प्रवर्तक ऋषि कणाद हैं (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी)। यह दर्शन न्याय दर्शन से बहुत साम्य रखता है किन्तु वास्तव में यह एक स्वतंत्र भौतिक विज्ञानवादी दर्शन है। इस प्रकार के आत्मदर्शन के विचारों का सबसे पहले महर्षि कणाद ने सूत्र रूप में (वैशेषिकसूत्र में) लिखा। यह दर्शन "औलूक्य", "काणाद", या "पाशुपत" दर्शन के नामों से प्रसिद्ध है। इसके सूत्रों का आरम्भ "अथातो धर्मजिज्ञासा" से होता है। इसके बाद दूसरा सूत्र है- "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि होती है, वह धर्म है। इसके लिये समस्त अर्थतत्त्व को छः ' पदार्थों ' (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय) में विभाजित कर उन्हीं का मुख्य रूप से उपपादन करता है। वैशेषिक दर्शन और पाणिनीय व्याकरण को सभी शास्त्रों का उपकारक माना गया है —

काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्

वैशेषिक का अर्थ है – "विशेषं पदार्थमधिकृत्य कृतं शास्त्रं वैशेषिकम्" अर्थात् 'विशेष' नामक पदार्थ को मूल मानकर प्रवृत्त होने के कारण इस शास्त्र का नाम वैशेषिक है। वैशेषिक दर्शन ६ पदार्थ मानता है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय । द्रव्यों की संख्या ९ मानता है – पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। २४ गुण स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिणाम, पार्थक्य, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुःख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, स्नेह, गुरुत्व और द्रव्यत्व हैं। कर्मों के ५ प्रकार माने गये हैं- उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। सामान्य के दो प्रकार इस दर्शन में माना गया है- सत्ता सामान्य और विशिष्ट सामान्य। इसमें प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने गये हैं।

इस दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त निम्न हैं –[1]

परमाणु – जगत का मूल उपादान कारण परमाणु माना है। दो परमाणुओं से 'द्वयणुक' एवं कतिपय द्वयणुक के संयोग से 'त्रसरेणु' उत्पन्न होता है।

अनेकात्मवाद – यह दर्शन जीवात्माओं को अनेक मानता है तथा कर्मफल भोग के लिए अलग-अलग शरीर मानता है।

असत्कार्यवाद – इस दर्शन का सिद्धान्त है कि कारण से कार्य होता है। कारण नित्य हैं, और कार्य अनित्य।

मोक्षवाद – जीव का परम् लक्ष्य मोक्ष (आवागमन के चक्र से मुक्त होना) मानता है। मिथ्या-ज्ञान को जीव के दुःख का कारण माना गया है।

इस दर्शन में भूकम्प आना, वर्षा होना, चुम्बक में गति, गुरुत्वाकर्षण विज्ञान, ध्वनि तरंगे आदि के विषय में विवेचना प्रस्तुत की गई है।

वैशेषिकसूत्र में दस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक और ३७० सूत्र हैं। पठन-पाठन में विशेष प्रचलित न होने के कारण वैशेषिक सूत्रों में अनेक पाठभेद हैं तथा 'त्रुटियाँ' भी पर्याप्त हैं। मीमांसासूत्रों की तरह इसके कुछ सूत्रों में पुनरुक्तियाँ हैं - जैसे "सामान्यविशेषाभावेच" (4 बार) "सामान्यतोदृष्टाच्चा विशेषः" (2 बार), "तत्त्वं भावेन" (4 बार), "द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्यख्याते" (3 बार), "संदिग्धस्तूपचारः" (2 बार)।

नामकरण

इसके नामकरण के दो कारण कहे जाते हैं -

(1) प्रत्येक नित्य द्रव्य को परस्पर पृथक् करने के लिए तथा प्रत्येक तत्व के वास्तविक स्वरूप को पृथक्-पृथक् जानने के लिए इन्होंने एक "विशेष" नाम का पदार्थ माना है ;

(2) "द्वित्व", "पाकजोत्पत्ति" एवं "विभागज विभाग" इन तीन बातों में इनका अपना विशेष मत है जिसमें ये दृढ़ हैं। अभिप्राय यह है कि वैशेषिक दर्शन व्यावहारिक तत्वों का विचार करने में संलग्न रहने पर भी स्थूल दृष्टि से सर्वथा व्यवहारतः समान रहने पर भी, प्रत्येक वस्तु दूसरे से भिन्न है। इन्होंने इसके परिचायक एकमात्र पदार्थ "विशेष" पर बल दिया है, इसलिए प्राचीन भारतीय दर्शन की

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

इस धारा को "वैशेषिक" दर्शन कहते हैं। अन्य शास्त्रों ने इस बात का विवेचन नहीं किया है। पर उक्त कुछ कारणों से इस दर्शन को "वैशेषिक दर्शन" की संज्ञा दी गई है।

वैशेषिक दर्शन के मुख्य ग्रंथ

- कणादकृत वैशेषिकसूत्र - इसमें दस अध्याय हैं।
- वैशेषिकसूत्र के दो भाष्यग्रन्थ हैं - रावणभाष्य तथा भारद्वाजवृत्ति। वर्तमान में दोनो अप्राप्य हैं।
- पदार्थधर्मसंग्रह (प्रशस्तपाद, ४थी सदी के पूर्व) वैशेषिक का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यद्यपि इसे वैशेषिकसूत्र का भाष्य कहा जाता है, किन्तु यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है।[11,12,13]
- पदार्थधर्मसंग्रह की टीका व्योमवती (व्योमशिवाचार्य, 8 वीं सदी),
- पदार्थधर्मसंग्रह की अन्य टीकाएँ हैं- न्यायकन्दली (श्रीधराचार्य, 10 वीं सदी), किरणावली (उदयनाचार्य 10 वीं सदी), लीलावती (श्रीवत्स, ११वीं शदी)।
- पदार्थधर्मसंग्रह पर आधारित चन्द्र के दशपदार्थशास्त्र का अब केवल चीनी अनुवाद प्राप्य है।
- ११वीं शदी के आसपास रचित शिवादित्य की सप्तपदार्थी में न्याय तथा वैशेषिक का सम्मिश्रण है।
- कटन्दी, वृत्ति-उपस्कर (शंकर मिश्र 15 वीं सदी),
- भाषापरिच्छेद या कारिकावली - विश्वनाथ न्यायपञ्चानन कृत (1634 ई) ; इस पर उन्होने 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली' नाम से स्वयं भाष्य लिखा है।
- तर्कसंग्रह : न्याय एवं वैशेषिक दोनो दर्शनों को समाहित करने वाला ग्रंथ है। इसके रचयिता अन्नम्भट्ट हैं जिनका समय १६२५ से १७०० ई माना जाता है।
- अन्य : वृत्ति, भाष्य (चंद्रकांत 20 वीं सदी), विवृत्ति (जयनारायण 20 वीं सदी), कणाद-रहस्य, तार्किक-रक्षा आदि अनेक मौलिक तथा टीका ग्रंथ हैं।[2]

न्याय एवं वैशेषिक

वैशेषिक तथा न्याय दोनों दर्शन ही "समानतंत्र" हैं। व्यावहारिक जगत् को यह वास्तविक मानते हैं। ये बाह्य जगत् तथा अंतर्जगत् की अवधारणा में परस्पर एवं घनिष्ठ संबंध मानते हैं। बाह्य जगत् (मानसिक) विचार पर निर्भर नहीं है, यह स्वतंत्र है।

'आत्मदर्शन' के लिए विश्व की सभी छोटी-बड़ी, तात्विक तथा तुच्छ वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना सामान रूप से आवश्यक है। इन तत्वों के ज्ञान के लिए प्रमाणों की अपेक्षा होती है। न्यायशास्त्र में प्रमाण पर विशेष विचार किया गया है, किंतु वैशेषिक दर्शन में मुख्य रूप से 'प्रमेय' के विचार पर बल दिया गया है।

यहाँ स्मरण कराना आवश्यक है कि न्याय की तरह वैशेषिक भी, लौकिक दृष्टि ही से विश्व के 'वास्तविक' तत्वों पर दार्शनिक विचार करता है। लौकिक जगत् की वास्तविक परिस्थितियों की उपेक्षा वह कभी नहीं करता, तथापि जहाँ किसी तत्व का विचार बिना सूक्ष्म दृष्टि का हो नहीं सकता, वहाँ किसी प्रकार अतीन्द्रिय, अदृष्ट, सूक्ष्म, योगज आदि हेतुओं के आधार पर अपने सिद्धांत को स्थापित करना इस धारा के दार्शनिकों का स्वभाव है, अन्यथा उनकी वैचारिक भित्तियां अंतर्विरोधी होतीं ; फलतः परमाणु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन आदि सत्ताओं का स्वीकार इस दर्शन में बराबर उपस्थित है।

वैशेषिकों के स्वरूप, वेष तथा आचार आदि 'नैयायिकों' की तरह होते हैं; जैसे, ये लोग शैव हैं, इन्हें शैव-दीक्षा दी जाती थी। इनके चार प्रमुख भेद हैं - शैव, पाशुपत, महाव्रतधर, तथा कालमुख एवं भरट, भक्तर, आदि गौण भेद भी मिलते हैं। वैशेषिक विशेष रूप से "पाशुपत्" कहे जाते हैं। (षड्दर्शनसमुच्चय, गुणरस्त की टीका न्याय-वैशेषिक मत। इस ग्रंथ से अन्य 'आचारों' के संबंध में संज्ञान हो सकता है)।

वैशेषिक मत में समस्त विश्व "भाव और अभाव" इन दो विभागों में विभाजित है। इनमें "भाव" के छह विभाग किए गए हैं- जिनके नाम हैं - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, तथा समवाय। अभाव के भी चार उप-भेद हैं - प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यंताभाव तथा अन्योन्याभाव। ग्रंथों में इनके लक्षण आदि कुछ इस तरह प्राप्त होते हैं :

भाव

द्रव्य जिसमें "द्रव्यत्व जाति" हो वही द्रव्य है। कार्य के समवायिकरण को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य गुणों का आश्रय है। पृथ्वी, जल, तेजस, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मनस् ये नौ "द्रव्य" कहलाते हैं। इनमें से प्रथम चार द्रव्यों के नित्य और अनित्य, दो भेद हैं। नित्यरूप को "परमाणु" तथा अनित्य रूप को कार्य कहते हैं। चारों भूतों के उस हिस्से को "परमाणु" कहते हैं जिसका पुन: भाग न किया जा सके, अतएव यह नित्य है। पृथ्वीपरमाणु के अतिरिक्त अन्य परमाणुओं के गुण भी नित्य है।

जिससे गंध हो वह "पृथ्वी", जिसमें शीत स्पर्श हो वह "जल" जिसमें उष्ण स्पर्श हो वह "तेजस्", जिनमें रूप न हो तथा अग्नि के संयोग से उत्पन्न न होने वाला, अनुष्ण और अशीत स्पर्श हो, वह "वायु", तथा शब्द जिसका गुण हो अर्थात् शब्द का जो समवायीकरण हो, वह "आकाश" है। ये ही 'पंचभूत' भी कहलाते हैं।

आकाश, काल, दिक् तथा आत्मा ये चार "विभु" द्रव्य हैं। मनस् अभौतिक परमाणु है और नित्य भी है। आज, कल, इस समय, उस समय, मास, वर्ष, आदि समय के व्यवहार का जो साधारण कारण है- वह काल है। काल नित्य और व्यापक है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर,

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

दक्षिण, आदि दिशाओं तथा विदिशाओं का जो असाधारण कारण है, वह "दिक्" है। यह भी नित्य तथा व्यापक है। आत्मा और मनस् का स्वरूप यहाँ न्यायमत के समान ही है।[15,16]

गुण कार्य का असमवायीकरण "गुण" है। रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह (चिकनापन), शब्द, ज्ञान, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म तथा संस्कार ये चौबीस गुण के भेद हैं। इनमें से रूप, गंध, रस, स्पर्श, स्नेह, स्वाभाविक द्रवत्व, शब्द तथा ज्ञान से लेकर संस्कार पर्यंत, ये "वैशेषिक गुण" हैं, अवशिष्ट साधारण गुण हैं। गुण द्रव्य ही में रहते हैं।

कर्म क्रिया को "कर्म" कहते हैं। ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना, सिकुड़ना, फैलाना तथा (अन्य प्रकार के) गमन, जैसे भ्रमण, स्पंदन, रेचन, आदि, ये पाँच "कर्म" के भेद हैं। कर्म द्रव्य ही में रहता है।

सामान्य अनेक वस्तुओं में जो एक सी बुद्धि होती है, उसके कारण प्रत्येक घट में जो "यह घट है" इस प्रकार की ए सी बुद्धि होती है, उसका कारण उसमें रहनेवाला "सामान्य" है, जिसे वस्तु के नाम के आगे "त्व" लगाकर कहा जाता है, जैसे - घटत्व, पटत्व। "त्व" से उस जाति के अंतर्गत सभी व्यक्तियों का ज्ञान होता है।

यह नित्य है और द्रव्य, गुण तथा कर्म में रहता है। अधिक स्थान में रहनेवाला "सामान्य", "परसामान्य" या "सत्तासामान्य" या "पर सत्ता" कहा जाता है। सत्तासामान्य द्रव्य, गुण तथा कर्म इन तीनों में रहता है। प्रत्येक वस्तु में रहनेवाला तथा अव्यापक जो सामान्य हो, वह "अपर सामान्य" या "सामान्य विशेष" कहा जाता है। एक वस्तु को दूसरी वस्तु से पृथक् करना सामान्य का अर्थ है।

विशेष द्रव्यों के अंतिम विभाग में रहनेवाला तथा नित्य द्रव्यों में रहनेवाला "विशेष" कहलाता है। नित्य द्रव्यों में परस्पर भेद करनेवाला एकमात्र यही पदार्थ है। यह अनंत है।

समवाय एक प्रकार का संबंध है, जो अवयव और अवयवी, गुण और गुणी, क्रिया और क्रियावान् जाति और व्यक्ति तथा विशेष और नित्य द्रव्य के बीच रता है। वह एक है और नित्य भी है।

अभाव

किसी वस्तु का न होना, उस वस्तु का "अभाव" कहा जाता है। इसके चार भेद हैं - "प्राग् अभाव" कार्य उत्पन्न होन के पहले कारण में उस कर्य का न रहना, "प्रध्वंस अभाव" कार्य के नाश होने पर उस कार्य का न रहना, "अत्यंत अभाव" तीनों कालों में जिसका सर्वथा अभाव हो, जैसे वंध्या का पुत्र तथा "अन्योन्य अभाव" परस्पर अभाव, जैसे घट में पट का न होना तथा पट में घट का न होना।

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन की तुलना

ये सभी पदार्थ न्यायदर्शन के प्रमेयों के अंतर्गत है। इसलिए न्यायदर्शन में इनका पृथक् विचार नहीं है, किंतु वैशेषिक दर्शन में तो मुख्य रूप से इनका विचार है। वैशेषिक मत के अनुसार इन सातों पदार्थों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने से मुक्ति मिलती है।

इन दोनों समान तत्वों में पदार्थों के स्वरूप में इतना भेद रहने पर भी दोनों दर्शन एक ही में मिले रहते हैं, इसका कारण है कि दोनों शास्त्रों का मुख्य प्रमेय है "आत्मा"। आत्मा का स्वरूप दोनों दर्शनों में एक ही सा है। अन्य विषय है - उसी आत्मा के जानने के लिए उपाय। उसमें इन दोनों दर्शनों में विशेष अंतर भी नहीं है। केवल शब्दों में तथा कहीं-कहीं प्रक्रिया में भेद है। फल में भेद नहीं है। अतएव न्यायमत के अनुसार प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान से दोनों से एक ही प्रकार की "मुक्ति" मिलती है। दोनों का दृष्टिकोण भी एक ही है।

न्याय वैशेषिक मत में पृथ्वी, जल, तेजस् तथा वायु इन्हीं चार द्रव्यों का कार्य रूप में भी अस्तित्व है। इन लागों का मत में सभी कार्य द्रव्यों का नाश हो जाता है और वे परमाणु रूप में आकाश में रहते हैं। यही अवस्था "प्रलय" कहलाती है। इस अवस्था में प्रत्येक जीवात्मा अपने मनस् के साथ तथा पूर्व जन्मों के कर्मों के संस्कारों के साथ तथा अदृष्ट रूप में धर्म और अधर्म के साथ विद्यमान रहती है। परतु इस समय सृष्टि का कोई कार्य नहीं होता। कारण रूप में सभी वस्तुएँ उस समय की प्रतीक्षा में रहती हैं, जब जीवों के सभी अदृष्ट कार्य रूप में परिणत होने के लिए तत्पर हो जाते हैं। परंतु अदृष्ट जड़ है, शरीर के न होने से जीवात्मा भी कोई कार्य नहीं कर सकती, परमाणु आदि सभी जड़ हैं, फिर "सृष्टि" के लिए क्रिया किस प्रकार उत्पन्न हो?

इसके उत्तर में यह जानना चाहिए कि उत्पन्न होनेवाले जीवों के कल्याण के लिए परमात्मा में सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है, जिससे जीवों के अदृष्ट कार्योन्मुख हो जाते हैं। परमाणुओं में ए प्रकार की क्रिया उत्पन्न हो जाती है, जिससे एक परमाणु, दूसरे परमाणु से संयुक्त हो जाते हैं। दो परमाणुओं के संयोग से एक "द्रव्यणुक" उत्पन्न होता है। पार्थिव शरीर को उत्पन्न करने के लिए जो दो परमाणु इकट्ठे होते हैं वे पार्थिव परमाणु हैं। वे दोनों उत्पन्न हुए "दव्यणुक" के समवायिकारण हैं। उन दोनों का संयोग असमवायिकारण है और अदृष्ट, ईश्वर की इच्छा, आदि निमित्तकारण हैं। इसी प्रकार जलीय, तैजस आदि शरीर के संबंध में समझना चाहिए।

यह स्मरण रखना चाहिए कि सजातीय दोनों परमाणु मात्र ही से सृष्टि नहीं होती। उनके साथ एक विजातीय परमाणु, जैसे जलीय परमाणु भी रहता है। "द्रव्यणुक" में अणु-परिमाण है इसलिए वह दृष्टिगोचर नहीं होता। "दवयणुक" से जो कार्य उत्पन्न होगा वह भी अणुपरिमाण का ही रहेगा और वह भी दृष्टिगोचर न होगा। अतएव दव्यणुक से स्थूल कार्य द्रव्य को उत्पन्न करने के लिए "तीन संख्या" की सहायता ली जाती है। न्याय-वैशेषिक में स्थूल द्रव्य, स्थूल द्रव्य का महत् परिमाणवाले द्रव्य से तथा तीन संख्या से उत्पन्न होता है। इसलिए यहाँ दव्यणुक की तीन संख्या से स्थूल द्रव्य "त्र्यणुक" या "त्रसरेणु" की उत्पत्ति होती है। चार त्र्यणुक से चतुरणुक

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

उत्पन्न होता है। इसी क्रम से पृथिवी तथा पार्थिव द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। द्रव्य के उत्पन्न होने के पश्चात् उसमें गुणों की भी उत्पत्ति होती है। यही सृष्टि की प्रक्रिया है।

संसार में जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं सभी उत्पन्न हुए जीवों के भोग के लिए ही हैं। अपने पूर्वजन्म के कर्मों के प्रभाव से जीव संसार में उत्पन्न होता है। उसी प्रकार भोग के अनुकूल उसके शरीर, योनि, कुल, देश, आदि सभी होते हैं। जब वह विशेष भोग समाप्त हो जाता है, तब उसकी मृत्यु होती है। इसी प्रकार अपने अपने भोग के समाप्त होने पर सभी जीवों की मृत्यु होती है।

न्यायमत - "संहार" के लिए भी एक क्रम है। कार्य द्रव्य में, अर्थात् घट में, प्रहार के कारण उसके अवयवों में एक क्रिया उत्पन्न होती है। उस क्रिया से उसके अवयवों में विभाग होता है, विभाग से अवयवी (घट) के आरंभक संयोगों का नाश होता है। और फिर घट नष्ट हो जाता है। इसी क्रम से ईश्वर की इच्छा से समस्त कार्य द्रव्यों का एक समय नाश हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि असमवायिकारण के नाश से कार्यद्रव्य का नाश होता है। कभी समवायिकारण के नाश से भी कार्यद्रव्य का नाश होता है।

इनका ध्येय है कि बिना कारण के नाश हुए कार्य का नाश नहीं हो सकता। अतएव सृष्टि की तरह संहार के लिए भी परमाणु में ही क्रिया उत्पन्न होती है और परमाणु तो नित्य है, उसका नाश नहीं होता, किंतु दो परमाणुओं के संयोग का नाश होता है और फिर उससे उत्पन्न "द्रव्यणुक" रूप कार्य का तथा उसी क्रम से "त्र्यणुक" एवं "चतुरणुक" तथा अन्य कार्यों का भी नाश होता है। नैयायिक लोग स्थूल दृष्टि के अनुसार इतना सूक्ष्म विचार नहीं करते। उनके मत में आघात मात्र ही से एक बारगी स्थूल द्रव्य नष्ट हो जाता है। कार्य द्रव्य के नाश होने पर उसके गुण नष्ट हो जाते हैं। इसमें भी पूर्ववत् दो मत हैं जिनका निरूपण "पाकज प्रक्रिया" में किया गया है।

न्याय मत की तरह वैशेषिक मत में भी बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान तथा प्रत्यय ये समान अर्थ के बोधक शब्द हैं। अन्य दर्शनों में ये सभी शब्द भिन्न भिन्न पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बुद्धि के अनेक भेद होने पर भी प्रधान रूप से इसके दो भेद हैं - "विद्या" और "अविद्या", अविद्या के चार भेद है - संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय तथा स्वप्न।[17,18]

संशय तथा विपर्यय का निरूपण न्याय में किया गया है। वैशेषिक मत में इनके अर्थ में कोई अंतर नहीं है। अनिश्चयात्मक ज्ञान को "अनध्यवसाय" कहते हैं। जैसे - कटहल को देखकर वाहीक को, एक सास्ना आदि से युक्त गाय को देखकर नारिकेल द्वीपवासियों के मन में शंका होती है कि यह क्या है?

दिन भर कार्य करने से शरीर के सभी अंग थक जाते हैं। उनको विश्राम की अपेक्षा होती है। इंद्रियाँ विशेषकर थक जाती हैं और मन में लीन हो जाती है। फिर मन मनोवह नाड़ी के द्वारा पुरीतत् नाड़ी में विश्राम के लिए चला जाता है। वहाँ पहुँचने के पहले, पूर्वकर्मों के संस्कारों के कारण तथा वात, पित्त और कफ इन तीनों के वैषम्य के कारण, अदृष्ट के सहारे उस समय मन को अनेक प्रकार के विषयों का प्रत्यक्ष होता है, जिसे स्वप्नज्ञान कहते हैं।

यहाँ इतना ध्यान में रखना चाहिए कि वैशेषिक मत में ज्ञान के अंतर्गत हो "अविद्या" को रखा है और इसीलिए "अविद्या" को "मिथ्या ज्ञान" भी कहते हैं। बहुतों का कहना है कि ये दोनों शब्द परस्पर विरुद्ध है। जो मिथ्या हैं, वह ज्ञान नहीं कहा जा सकता और जो ज्ञान है, वह कदापि मिथ्या नहीं कहा जा सकता।

विद्या भी चार प्रकार की है - प्रत्यक्ष, अनुमान, स्मृति तथा आर्ष। यहाँ यह ध्यान में रखना है कि न्याय में "स्मृति" को यथार्थज्ञान नहीं कहा है। वह तो ज्ञात ही का ज्ञान है। इसी प्रकार "आर्ष ज्ञान" भी नैयायिक नहीं मानते। नैयायिकों के शब्द या आगम को अनुमान में तथा उपमान को प्रत्यक्ष में वैशेषिकों ने अंतर्भूत किया है।

वेद के रचनेवाले ऋषियों को भूत तथा भविष्य का ज्ञान प्रत्यक्ष के समान होता है। उसमें इंद्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष की आवश्यकता नहीं रहती। यह "प्रातिभ" (प्रतिभा से उत्पन्न) ज्ञान या "आर्षज्ञान" कहलाता है। यह ज्ञान विशुद्ध अत:करणवाले जीव में भी कभी कभी हो जाता है। जैसे - एक पवित्र कन्या कहती है - कल मेरे भाई आवेंगे और सचमुच कल उसके भाई आ ही जाते हैं। यह "प्रातिभ ज्ञान" है।

प्रत्यक्ष और अनुमान के विचार में दोनों दर्शनों में कोई भी मतभेद नहीं है। इसलिए पुनः इनका विचार यहाँ नहीं किया गया।

कर्म का बहुत विस्तृत विवेचन वैशेषिक दर्शन में किया गया है। न्याय दर्शन में कहे गए "कर्म" के पाँच भेदों को ये लोग भी उन्हीं अर्थों में स्वीकार करते हैं। कायिक चेष्टाओं ही को वस्तुत: इन लोगों ने "कर्म" कहा है। फिर भी सभी चेष्टाएँ प्रयत्न के तारतम्य ही से होती हैं। अतएव वैशेषिक दर्शन में उक्त पाँच भेदों के प्रत्येक के साक्षात् तथा परंपरा में प्रयत्न के संबंध से कोई कर्म प्रयत्नपूर्वक होते हैं, जिन्हें "सत्प्रत्यय-कर्म" कहते हैं, कोई बिना प्रयत्न के होते हैं, जिन्हें "असत्प्रत्यय-कर्म" कहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे कर्म होते हैं, जैसे पृथ्वी आदि महाभूतों में, जो बिना किसी प्रयत्न के होते हैं, उन्हें "अप्रत्यय-कर्म" कहते हैं।

इन सब बातों को देखकर यह स्पष्ट है कि वैशेषिक मत में तत्वों का बहुत सूक्ष्म विचार है। फिर भी सांसारिक विषयों में न्याय के मत में वैशेषिक बहुत सहमत है। अतएव ये दोनों "समानतंत्र" कहे जाते हैं।

न्याय एवं वैशेषिक में प्रमुख भेद (सारांश)

इन दोनों दर्शनों में जिन बातो में "भेद" है, उनमें से कुछ भेदों का पुन: उल्लेख यहाँ किया जाता है।

- (1) न्यायदर्शन में प्रमाणों का विशेष विचार है। प्रमाणों ही के द्वारा तत्वज्ञान होने से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। साधारण लौकिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर न्यायशास्त्र के द्वारा तत्वों का विचार किया जाता है। न्यायमत में सोलह पदार्थ हैं और नौ

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

प्रमेय हैं।
वैशेषिक दर्शन में प्रमेयों का विशेष विचार है। इस शास्त्र के अनुसार तत्वों का विचार करने में लौकिक दृष्टि से दूर भी शास्त्रकार जाते हैं। इनकी दृष्टि सूक्ष्म जगत् के द्वार तक जाती है इसलिए इस शास्त्र में प्रमाण का विचार गौण समझा जाता है। वैशेषिक मत में सात पदार्थ हैं और नौ द्रव्य हैं।

- (2) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द इन चार प्रमाणों को न्याय दर्शन मानता है, किंतु वैशेषिक केवल प्रत्यक्ष और अनुमान इन्हीं दो प्रमाणों को मानता है। इसके अनुसार शब्दप्रमाण अनुमान में अंतर्भूत है। कुछ विद्वानों ने इसे स्वतंत्र प्रमाण भी माना है।
- (3) न्यायदर्शन के अनुसार जितनी इंद्रियाँ हैं उतने प्रकार के प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे - चाक्षुष, श्रावण, रासन, घ्राणज तथा स्पार्शना किंतु वैशेषिक के मत में एकमात्र चाक्षुष प्रत्यक्ष ही माना जाता है।
- (4) न्याय दर्शन के मत में समवाय का प्रत्यक्ष होता है, किंतु वैशेषिक के अनुसार इसका ज्ञान अनुमान से होता है।
- (5) न्याय दर्शन के अनुसार संसार की सभी कार्यवस्तु स्वभाव ही से छिद्रवाली होती हैं। वस्तु के उत्पन्न होते ही उन्हीं छिद्रों के द्वारा उन समस्त वस्तुओं में भीतर और बाहर आग या तेज प्रवेश करता है तथा परमाणु पर्यंत उन वस्तुओं को पकाता है। जिस समय तेज की कणाएँ उस वस्तु में प्रवेश करती हैं, उस समय उस वस्तु का नाश नहीं होता। यह अंग्रेजी में 'केमिकल ऐक्शन' कहलाता है। जैसे - कुम्हार घड़ा बनाकर आवें में रखकर जब उसमें आग लगाता है, तब घड़े के प्रत्येक छिद्र से आग की कणाएँ उस में प्रवेश करती हैं और घड़े के बाहरी और भीतरी हिस्सों को पकाती हैं। घड़ा वैसे का वैसा ही रहता है, अर्थात् घड़े के नाश हुए बिना ही उसमें पाक हो जाता है। इसे ही न्याय शास्त्र में "पिठरपाक" कहते हैं।

वैशेषिकों का कहना है कि कार्य में जो गुण उत्पन्न होता है, उस पहले उस कार्य के समवायिकारण में उत्पन्न होना चाहिए। इसलिए जब कच्चा घड़ा आग में पकने को दिया जाता है, तब आग सबसे पहले उस घड़े के जितने परमाणु हैं, उन सबको पकाती है और उसमें दूसरा रंग उत्पन्न करती है। फिर क्रमश: वह घड़ा भी पक जाता है और उसका रंग भी बदल जाता है। इस प्रक्रिया के अनुसार जब कुम्हार कच्चे घड़े को आग में पकने के लिए देता है, तब तेज के जोर से उस घड़े का परमाणु पर्यंत नाश हो जाता है और उसके परमाणु अलग अलग हो जाते हैं पश्चात् उनमें रूप बदल जाता है, अर्थात् घड़ा नष्ट हो जाता है और परमाणु के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा रंग बदल जाता है, फिर उस घड़े से लाभ उठानेवालों के अदृष्ट के कारणवश सृष्टि के क्रम से फिर बनकर वह घड़ा तैयार हो जाता है। इस प्रकार उन पक्व परमाणुओं से संसार के समस्त पदार्थ, भौतिक या अभौतिक तेज के कारण पकते रहते हैं। इन वस्तुओं में जितने परिवर्तन होते हैं वे सब इसी पाकज प्रक्रिया (केमिकल ऐक्शन) के कारण होते हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह पाक केवल पृथिवी से बनी हुई वस्तुओं में होता है। इसे वैशेषिक "पीलुवाक" कहते हैं।

- (6) नैयायिक असिद्ध, विरुद्ध, अनैकांतिक, प्रकरणसम तथा कालात्ययापदिष्ट - ये पाँच हेत्वाभास मानते हैं, किंतु वैशेषिक विरुद्ध, असिद्ध तथा संदिग्ध, ये ही तीन हेत्वाभास मानते हैं।
- (7) नैयायिकों के मत में पुण्य से उत्पन्न "स्वप्न" सत्य और पाप से उत्पन्न स्वप्न असत्य होते हैं, किंतु वैशेषिक के मत में सभी स्वप्न असत्य हैं।
- (8) इनके अतिरिक्त कर्म की स्थिति में, वेगाख्य संस्कार में, सखंडोपाधि में, विभागज विभाग में, द्वित्वसंख्या की उत्पत्ति में, विभुओं के बीच अजसंयोग में, आत्मा के स्वरूप में, अर्थ शब्द के अभिप्राय में, सुकुमारत्व और कर्कशत्व जाति के विचार में, अनुमान संबंधों में, स्मृति के स्वरूप में, आर्ष ज्ञान में तथा पार्थिव शरीर के विभागों में भी परस्पर इन दोनों शास्त्रों में मतभेद हैं।

इस प्रकार के दोनों शास्त्र कतिपय सिद्धांतों में भिन्न-भिन्न मत रखते हुए भी परस्पर संबद्ध हैं। इनके अन्य सिद्धांत परस्पर लागू होते हैं।

निष्कर्ष

भौतिकी के अनुसार 'पदार्थ' को भौतिक राशि (physical quantity) के समतुल्य माना जा सकता है, जब कि वैशेषिक मान्यतानुसार पदार्थ में 'भूत' (Basic Matter) और आधिभौतिक (आत्मा और मन) से सम्बन्धित राशियाँ सम्मिलित होती हैं, जहाँ 'भूत' भौतिक इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है। सम्प्रति भौतिक राशि को अधोलिखित प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं- भूत विशिष्ट ज्ञान को भौतिक पदार्थ कहते हैं। अर्थात् इसे (१) भूत (Basic Matter) (२) इससे सम्बन्धित विशिष्ट ज्ञान, अथवा (iii) उभय रूप में सीमाबद्ध किया जा सकता है। पुन: भूत को साक्षात्कार (identity), साक्षात्कार के सांयोगिक सम्बन्ध (Conjunctive Relation of Identity) और यहाँ तक कि इन्द्रियों से सम्पूर्ण रूप से असम्बद्ध जानने योग्य ज्ञान (cognition of cognizables) से परिभाषित किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषा में 'विशिष्ट ज्ञान' का अर्थ है- इसका आधार, इसका सहगामी कारक से संयोग और इसका आधार (आश्रय) के अतिरिक्त अन्य से सम्बन्ध। इस हेतु ठोस, द्रव, ऊर्जा, गैस और प्लाज्मा 'भूत' हैं अथवा भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के पदार्थ हैं, क्योंकि ये बहिरिन्द्रियों जैसे नाक, रसना, आँख, त्वचा और कान के द्वारा प्रत्यक्ष ग्राह्य हैं। अथवा यह कह सकते हैं कि इन्द्रियों से ग्राह्य विशेष गुणवान् पदार्थ भौतिक पदार्थ हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

ये भौतिक पदार्थ दिक् और काल के साथ सांयोगिक सम्बन्ध रखते हैं। 'गुण' कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय के साथ अनुभव करने योग्य सम्बन्ध रखते हैं। आत्मा और मन को, जो भूत पदार्थों के साथ सांयोगिक सम्बन्ध रखते हैं, को भौतिक राशि में निविष्ट किया जाय अथवा पृथक् रूप से आधि-भौतिक राशियों के रूप में उल्लिखित किया जाय इससे भौतिक राशियों से सम्बद्ध वैशेषिक दर्शन की विचारधारा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

वैशेषिक के छः पदार्थ

कणाद ने भौतिक राशियों को छ: वर्गों या ६ मूलभूत अमूर्त राशियों में निबद्ध किया है। वे ये हैं -

वैशेषिक सूत्र के प्रशस्तपादभाष्य के टीकाकार श्रीधराचार्य नें 'न्यायकन्दली' टीका के उद्देश्य प्रकरण में इन पदार्थों की परिभाषाएँ अधोलिखित प्रकार से की हैं-

(1) द्रव्य (मूलभूत भौतिक राशि)[6] द्रव्य वह है जिनमें गुण निहित होते हैं।

(2) गुण (Property)[7] गुण वह है जो गुण नहीं रखता और जो संयोग और विभाग का स्वतन्त्र कारक नहीं है।

(3) कर्म (Motion)[8] कर्म वह है जो मूलभूत भौतिक राशियों पर आश्रित होता है, परन्तु गुण से विहीन, संयोग और विभाग हेतु स्वतन्त्र है।

(4) सामान्य (Set)[9] सामान्य एकाकार प्रतीति का कारण है।

(5) विशेष (Partlessness or Specific)[10] विशेष चरम विभिन्नता के बोध का कारण है।

(6) समवाय (Concomitance)[11] समवाय का अर्थ है, आधार और आधेय के मध्य की असंयोगिक विद्यमानता।

वैशेषिक दर्शन में उपर्युक्त पदार्थों की उपश्रेणियों का निर्देश किया गया है-

द्रव्य (Basic Physical Quantity)[12]

(१) पृथ्वी (solid), (२) अप् (liquid), (३) तेज (energy), (४) वायु (gas), (५) आकाश (plasma), (६) दिक् (length vector), (७) काल (time), (८) आत्मा (organism) (९) मन (mind/attention)।

गुण (Property)[13]

(१) रूप (colour), (२) रस (taste), (३) गंध (smell), (४) स्पर्श (temperature), (५) संख्या (number), (६) परिमाण-इकाई (unit), (७) पृथकत्व (seprateness), (८) संयोग (conjunction), (९) विभाग (disconjunction), (१०) परत्व (priority largeness), (११) अपरत्व (posteriority smallness), (१२) गुरुत्व (gravity), (१३) द्रवत्व (cohesion), (१४) स्नेहत्व (adhesion), (१५) शब्दवृत्ति (waveaspect), (१६) बुद्धि (cognition), (१७) सुख (pleasure), (१८) दु:ख (pain), (१९) इच्छा (desire), (२०) द्वेष (aversion), (२१) प्रयत्न (voliation), (२२) धर्म (cosmic order), (२३) अधर्म (cosmic degeneracy; entropy), (२४) संस्कार (force) [यांत्रिक (mechanical), स्थितिस्थापक (elastic), एवं वेगात्मक (emotional)].

कर्म (Motion)[14]

(१) उत्क्षेपण (motion against gravity), (२) अवक्षेपण (motion along gravity), (३) आकुंचन (motion causing shear stress), (४) प्रसारण (motion causing tensile stress), (५) गमन (linear motion).

सामान्य (Set)[15]

(१) पर सामान्य (universal set), (२) परापर सामान्य (subset), (३) अपर सामान्य (element)

विशेष (partlessness)[16]

(१) परमाणु (quantum; finite), (२) विभु (continuum, infinite)

समवाय (concomitance)[17]

वस्तुत: भारतीय दर्शन की न्याय-शाखा के 'पदार्थों' के उपयोग के आधार पर वैशेषिक के पदार्थों का अध्ययन आधुनिक भौतिकी के समानान्तर किया जा सकता था।[18]

चूंकि, न्याय दर्शन की पद्धति स्व-मतों या सिद्धान्तों को गहन दुर्बोध भाषा में व्यक्त करती है, इस हेतु सर्वविदित भौतिकीय सिद्धान्तों को बीजगणितीय पदों द्वारा परिभाषित करके अधिक शुद्धता या यर्थाथता से व्यक्त किया जा सकता है। यदि वैशेषिक दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों को 'प्रशस्तपाद भाष्य' का अनुसरण करते हुए व्यवस्थित किया जाय, अर्थात् उचित गणितीय समीकरणों में प्रतिफलित किया जाय और आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का आवश्यकतानुसार उपयोग करके इनका विश्लेषण और परीक्षण किया जाय, तो वैशेषिक दर्शन का यह वैज्ञानिक अध्ययन अवश्य ही फलदायक सिद्ध होगा और इसमें भी कोई संदेह नहीं कि 'आत्मा' (soul / organism) और मन (mind / attention) की सिद्धि सामान्य भौतिकी के क्षेत्र को और अधिक विस्तृत और प्रशस्त करेगी।

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर अब हम इस स्थिति में हैं कि द्रव्य का विवेचनात्मक अध्ययन विभिन्न सापेक्ष भौतिक राशियों की तुलना में कर सकें।[18]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | | Impact Factor: 5.454 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 6, Issue 1, January 2019 |

| DOI:10.15680/IJARASEM.2019.0601026 |

संदर्भ

1 महर्षि कणाद्, वैशेषिक सूत्र १/१/४ (६०० ई. पू.) "धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्माभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।। "
2 महर्षि कणाद्, वैशेषिक सूत्र १/१/५ (६०० ई. पू) "पृथिव्यपस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।।"
3 महर्षि कणाद्, वैशेषिक सूत्र १/१/४ (६०० ई. पू.) "अमिष्वाद्यानां चतुर्णां द्रव्याणां द्रव्यारम्भकत्वम्।।"
4 महर्षि कपिल, सांख्य सूत्र २/१०/१ (५०० ई. पू.), "दिक्कालावाकाशादिभ्यः।।"
5 डॉ॰ नारायण गोपाल डोंगरे, वैशेषिकसिद्धान्तानां गणितीयपद्धत्या विमर्शः, पृ. ९।। (१९९५),
6 महर्षि कणाद्, वैशेषिक टीका, न्यायकन्दली (६०० ई. पू.) "गुणाश्रयो द्रव्यम्।।"
7 महर्षि कणाद्, वैशेषिक टीका, न्यायकन्दली (६०० ई. पू.) "सामान्यवान् गुणः, संयोगविभागयोरनपेक्षो न कारणं गुणः।।"
8 महर्षि कणाद्, वैशेषिक टीका, न्यायकन्दली (६०० ई. पू.) "एकद्रव्यंगुणं संयोगविभागयोरनपेक्षकारणं कर्म।।"
9 महर्षि कणाद्, वैशेषिक टीका, न्यायकन्दली (६०० ई. पू.) "अनुवृत्तिप्रत्ययकारणं सामान्यम्।।"
10 महर्षि कणाद्, वैशेषिक टीका, न्यायकन्दली (६०० ई. पू.) "अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिर्हेतुर्विशेषः।।"
11 महर्षि कणाद्, वैशेषिक टीका, न्यायकन्दली (६०० ई. पू.), "अयुतसिद्धयोराश्रयाश्रयिभावःसमवायः।।"
12 महर्षि कणाद्, वैशेषिक सूत्र १/१/५, (६०० ई. पू.), "पृथिव्यपस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।।"
13 प्रशस्तपाद, वैशेषिक भाष्य, (२०० ई. पू.), "रुपरसगंधस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथकत्त्वसंयोग-विभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्चेति कण्ठोक्ताः सप्तदशः। चशब्दसमुच्चिताश्च गुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारादृष्टशब्दाः सप्तैवेत्येवं चतुर्विंशति गुणाः।।"
14 महर्षि कणाद्, वैशेषिक सूत्र, (६०० ई. पू.), "उत्क्षेपणावक्षेपणाकुंचनप्रसारणगमनानि पंचैव कर्माणि।।"
15 प्रशस्तपाद, वैशेषिक भाष्य, (२०० ई. पू.), "सामान्यं त्रिविधं परं-अपरं-परापरम्।।"
16 डॉ॰ नारायण गोपाल डोंगरे, वैशेषिक सिद्धान्तानां गणितीय पद्धत्या विमर्शः (१९९५), "विगतः शेषोयस्मात् विशेषः निरवयवा धारेण नित्यः परमाणु विभुरूपत्वेन द्विधा।"
17 डॉ॰ नारायण गोपाल डोंगरे, वैशेषिक सिद्धान्तानां गणितीय पद्धत्या विमर्शः (१९९५), "एतस्समवायः तन्निष्ठगुणकर्मणां चाधाराधेयभावमूलकं सम्बन्धं ;गणितीय समीकरणम्द्ध स्फुटी करोति।"
18 महर्षि गौतम, न्याय सूत्र (५०० ई. पू.), "प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्क-निर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिकपटनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।।"